International Journal of Advanced Multidisciplinary Research in Social Sciences and Humanities
ISSN: 0000-0000
https://ijamrssh.org/
A Peer-Reviewed, Open Access, Multidisciplinary Academic Journal

Volume-1, Issue-1 2026, Page No. 15 -20 Received: 19-06-2026, Accepted: 30-06-2026, Published: 24-07-2026

इक्कीसवीं सदी की कवयित्रियों की कविता में प्रकृति-संवेदना के स्वर

ऋतिका कुशवाह
हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,अलीगढ़

Abstract

इक्कीसवीं सदी में पर्यावरणीय-संकट, जलवायु-परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों के निरंतर दोहन तथा लगतर परिवर्तित होती जीवन-शैली ने प्रकृति और पर्यावरण के प्रश्न को साहित्यिक-विमर्श के केंद्र में ला खड़ा किया है । इक्कीसवीं सदी की कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में इन परिवर्तनों को गूढ़-संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया है । इनकी कविताओं में प्रकृति केवल सौंदर्य का विषय मात्र नहीं है; वरन् वह मनुष्य के जीवन, स्मृतियों, संबंधों और अस्तित्व से गहराई से जुड़ी हुई दिखाई देती है । साथ ही उनकी कविताएँ पारिस्थितिक-असंतुलन, पर्यावरण के प्रति बढ़ती मनुष्य की गैर-जिम्मेदाराना मानसिकता और प्रकृति के विनाश पर गंभीर चिंता भी व्यक्त करती हैं । अतः प्रस्तुत शोध-लेख का उद्देश्य इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कवयित्रियों की कविता में व्यंजित प्रकृति-संवेदना का विश्लेषण करना है । इस अध्ययन में प्रमुख कवयित्रियों की प्रतिनिधि कविताओं के आधार पर मेरे द्वारा यह समझने का प्रयास किया गया है कि वे प्रकृति को किस दृष्टि से देखती हैं तथा पर्यावरण-संरक्षण और 'मनुष्य व प्रकृति' के संतुलित संबंध के प्रति समाज को किस प्रकार जागरूक करती हैं । मेरे द्वारा किए गए इस अध्ययन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि समकालीन हिन्दी कवयित्रियों की कविता में कैसे प्रकृति के प्रति आत्मीय-लगाव और पर्यावरण के प्रति उत्तरदायित्व-बोध की भावना साथ-साथ पनपती है।

Keywords : इक्कीसवीं सदी, हिन्दी कवयित्रियाँ, समकालीन हिन्दी कविता, हिन्दी साहित्य, प्रकृति-संवेदना, पारिस्थितिकी, पर्यावरण संरक्षण, प्रकृति, पारिस्थितिक संतुलन, जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता, स्त्री-दृष्टि, मानव-प्रकृति संबंध, पारिस्थितिक-संकट, पर्यावरणीय-विमर्श इत्यादि ।

'प्रकृति' मानव-जीवन के आरंभ से ही उसका अभिन्न आधार रही है। भारतीय संस्कृति और साहित्य में प्रकृति को हमेशा से जीवन, सृजन और संवेदना के स्रोत के रूप में देखा गया है । हिन्दी कविता की परंपरा में भी प्रकृति ने मनुष्य के भाव-जगत, सामाजिक-अनुभवों और सांस्कृतिक-चेतना को अभिव्यक्ति देने का कार्य किया है । बदलते समय के साथ प्रकृति के प्रति विद्यमान साहित्यिक-दृष्टि में भी परिवर्तन आया है । इक्कीसवीं सदी में औद्योगीकरण, शहरीकरण, उपभोक्तावाद और जलवायु-परिवर्तन जैसी वैश्विक-चुनौतियों ने पर्यावरण के प्रश्न को वैश्विक चिंता का विषय बना दिया है। प्राकृतिक-संसाधनों का निरंतर दोहन, वनों का क्षरण, जल और वायु प्रदूषण तथा पारिस्थितिक-असंतुलन केवल ईकोलॉजिस्ट, प्रयावरणविज्ञों तथा सहज प्रकृति-प्रेमियों के ही चिंता का विषय नहीं बना है; अपितु सचेत एवं प्रकृति-संवेदी साहित्यकारों का ध्यान भी इस विषय की गंभीरता की ओर आकृष्ट किया है । परिणामतः समकालीन हिन्दी कविता में प्रकृति के प्रति व्यक्त आत्मीयता के साथ-साथ पर्यावरण-संरक्षण और पारिस्थितिक-संतुलन की चिंता भी प्रमुखता से उभरकर सामने आती है ।

समकालीन हिन्दी कवयित्रियों की कविता अध्ययन-मनन करते हुए बार-बार यह महसूस होता है कि प्रकृति उनके लिए कोई बाहरी आलंबन मात्र नहीं है; वह उनके अनुभवों, स्मृतियों और जीवन-यात्रा का हिस्सा है । उनके अनुसार; यदि नदी, जंगल, पहाड़ और वृक्ष हमारे जीवन का हिस्सा हैं; तो उनके बदलते स्वरूप के प्रति सजग रहना भी उतना ही आवश्यक है । यही कारण है कि उनकी कविताओं में प्रकृति के प्रति आत्मीयता के साथ उसकी रक्षा का भाव भी सहज रूप से जुड़ा हुआ मिलता है । इस दृष्टि से संरक्षण की भावना प्रकृति-संवेदना का स्वाभाविक विस्तार बन जाती है; अतः इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कवयित्रियों ने प्रकृति को अपनी काव्य-जगत का एक महत्त्वपूर्ण आधार बनाया है – यथा; कवयित्री सविता सिंह, इन्दु जैन, अनिता वर्मा, मनीषा डांगा, वंदना टेटे, रति सक्सेना, निवेदिता, कविता गुप्ता, ग्रेस कुजुर, अनीता वर्मा, अलका सिन्हा, श्यामा सिंह, मुग्धा सिन्हा, अंजू रंजन तथा अन्य समकालीन

कवयित्रियों की रचनाओं में प्रकृति अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है । कहीं वह जीवन और आशा का प्रतीक बनकर सामने आती है; कहीं स्मृतियों और लोकजीवन का आधार बनती है; तो कहीं पर्यावरण विनाश के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर बनकर सामने आती है । इन कवयित्रियों की काव्य-दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि प्रकृति और मनुष्य का संबंध केवल उपयोगिता का नहीं; बल्कि यह संबंध सह-अस्तित्व, संवेदना और नैतिक उत्तरदायित्व का संबंध है । इसी कारण इनकी कविताएँ समकालीन पर्यावरणीय-विमर्श को एक मानवीय और संवेदनात्मक आधार प्रदान करती हैं ।

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में 'प्रकृति' एक व्यापक जीवनानुभव के रूप में हमारे सामने आती है । समकालीन कवयित्रियों ने अपने समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक परिवर्तनों को प्रकृति के विविध रूपों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । इस क्रम में कवयित्री **सविता सिंह** के काव्य-संग्रह **'स्वप्न समय'** की कविता **'ऐ हवा'** तथा **'वासना एक नदी का नाम है'** संग्रह में संकलित कविताएं - **'दूसरी पृथ्वी', 'वासना की राह', 'पेड़ होना', 'बेज़ार' और 'सम्भोगरत'** आदि उल्लेखनीय हैं । सविता सिंह के यहाँ पृथ्वी, हवा और वृक्ष – जीवन, स्वतंत्रता और सह-अस्तित्व के प्रतीक हैं । वे प्रकृति को मनुष्य के अस्तित्व से जोड़ते हुए पर्यावरणीय असंतुलन और मानवीय संवेदनहीनता पर प्रश्न उठाती हैं । इसी प्रकार कवयित्री **इन्दु सिंह** के काव्य-संग्रह **'तुम्हारे जाने के बाद'** में संकलित कविता **'मेरा परिचय'** प्रकृति के माध्यम से आत्मपहचान और स्मृतियों की पुनर्स्थापना करती है; उनके यहाँ 'प्रकृति' मनुष्य की सांस्कृतिक-जड़ों और भावनात्मक-पहचान का आधार बनती है । **निवेदिता** के काव्य-संकलन **'ज़ख़्म जितने थे'** में कविता **'इतिहास'** समय, प्रकृति और मनुष्य के संबंधों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करती है तथा पर्यावरणीय-क्षरण को सभ्यता के संकट से जोड़ती है । **मनीषा डांगा** के काव्य संग्रह **'फ्लाई-ओवर'** की कविताएँ **'परिन्दें'** और **'मेरी बात'** शहरी जीवन के बीच प्रकृति के सिकुड़ते संसार और मनुष्य के बढ़ते अकेलेपन का चित्र प्रस्तुत करती हैं । लेखिका **अल्का सिन्हा** की **'कचनार पर कविता'** प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य के माध्यम से जीवन की ऊर्जा और संवेदनशीलता को अभिव्यक्त करती है । प्रमुख आदिवासी कवयित्री **वन्दना टेटे** की कविता **'कविताओं वाली नदी'** में नदी केवल जलधारा नहीं; बल्कि आदिवासी जीवन, लोक-संस्कृति और सामुदायिक स्मृति की संवाहक है; **ग्रेस कुजूर** की कविता **'हे समय के पहरेदारों'** जंगल, पहाड़ और धरती को आदिवासी अस्मिता के साथ जोड़ते हुए प्रकृति के दोहन का प्रतिरोध करती है । कवयित्री **अनीता वर्मा** की कविता **'पृथ्वी'** और **'देखा'** पृथ्वी की सहनशीलता तथा मनुष्य के नैतिक दायित्व को रेखांकित करती हैं । इसी प्रकार **रति सक्सेना** की **'मैं चाहती हूँ कि शब्द उगाऊँ'** कविता में शब्द और बीज का सुंदर रूपक प्रकृति और सृजन के गहरे संबंध को स्थापित करता है । **प्रज्ञा गुप्ता** के काव्य-संग्रह **'काँस के फूलों ने कहा जौहार'** में संकलित कविताएँ **'पृथ्वी के लिए कुछ भी बोझ नहीं', 'पृथ्वी को पता है उसे कितना घूमना है'** तथा **'नदियाँ धरती की बेटियाँ हैं'** पृथ्वी और नदियों को जीवंत सत्ता मानते हुए पर्यावरण संरक्षण का सशक्त संदेश देती हैं । कवयित्री **श्यामा सिंह** की कविता **'वन का कानून'** जंगल के स्वाभाविक अनुशासन और मानवीय हस्तक्षेप के दुष्परिणामों को रेखांकित करती है; वहीं **मुग्धा सिन्हा** की कविता **'नारी'** में स्त्री और प्रकृति के साझा अनुभवों का चित्रण मिलता है; जबकि **अंजू रंजन** की कविता **'झारखंड के जंगल'** और **'देश को ढूँढ़ती हूँ'** – विकास, विस्थापन और जंगलों के विनाश के बीच 'प्रकृति' को अस्तित्व और पहचान के आधार के रूप में स्थापित करती हैं ।

'प्रकृति' मनुष्य के अस्तित्व का मूल आधार होने के साथ-साथ उसकी संवेदनात्मक-चेतना का भी महत्वपूर्ण स्रोत रही है । साहित्य में भी प्रकृति का स्वरूप समय के साथ बदलता रहा है; जहाँ परंपरागत काव्य में प्रकृति मुख्यतः सौंदर्य और आलंबन के रूप में चित्रित होती थी; वहीं समकालीन हिन्दी कविता में वह जीवन-दृष्टि, मानवीय मूल्यों और सह-अस्तित्व की वाहक बनकर सामने आती है । विशेषतः समकालीन कवयित्रियाँ प्रकृति को अपने अनुभव-जगत से जोड़ते हुए उसके साथ एक आत्मीय और जीवंत संबंध स्थापित करती हैं । इस संदर्भ में कवयित्री **सविता सिंह** की प्रकृति-संवेदना विशेष रूप से उल्लेखनीय है । उनकी कविताएं - **'कोई हवा'**, **'मन ही नदी है'**, **'समाप्त होती तितलियाँ'**, **'जंगल के पेड़'**, **'मौसम'**, **'नाचो पृथ्वी'**, **'जब पत्ते झर रहे होते हैं'** तथा **'पत्तों का संसार या हमारा'** आदि कविताओं में प्रकृति मनुष्य की सह-यात्री, प्रेरक और जीवन-प्रेरणा के रूप में उपस्थित होती है । इसी भावभूमि को व्यक्त करती उनकी कविता **'कोई हवा'** की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

"कोई हवा,
मुझे भी ले चले अपनी रौ में,
उन नदियों, पहाड़ों, जंगलों में,
जहाँ दूसरे जीवों का जीना होता है
मुझे भी दिखाए
कठिनतम स्थितियों में कैसे बचा रहता है जीवन" [1]

प्रकृति के प्रति गहरे अनुराग और उसकी जीवनदायी शक्ति में विश्वास को अभिव्यक्त करने वाली कविताओं में **सविता सिंह** की कविता **'नाचो पृथ्वी'** विशेष रूप से उल्लेखनीय है; जिसमे प्रकृति आशा, पुनर्सृजन और जीवन की निरंतरता का प्रतीक बनकर उपस्थित होती है । वर्षा, बादल, पेड़ और पृथ्वी जैसे प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से कवयित्री जीवन में नवचेतना और उत्साह का संचार करती हैं; इस भाव को उनकी कविता **'नाचो पृथ्वी'** की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है –

"नाचो पृथ्वी,
आ रहे हैं ढेर सारे बादल
ढेर सारी शुभकामनाओं की तरह
गदगद हो रहा है हृदय
बारिश से भर जायेगा सूखा पोखर,
भर जाएँगे बेढ़ब कई गड्ढे,

[1] अपने जैसा जीवन, सविता सिंह, राधाकृष्ण पेपरबैक, नई दिल्ली, पहला संकरण-2023, पृ-16

रास्ते टूटे-फूटे
भर जाएगा निर्जन एक मन,
जिसमें उड़ती-पड़ती रहती है निरर्थक धूल" [2]

प्रकृति के छोटे-छोटे बिंब भी समय के बदलाव, जीवन की विडंबनाओं और मानवीय संवेदनाओं को गहराई से व्यक्त करते हैं । इसी कारण आज की कविता में प्रकृति का अर्थ जीवन और समय को समझने का एक महत्त्वपूर्ण आधार है । इसी प्रकार कवयित्री **अनामिका** के काव्य-संग्रह **'एक कस्बाई लड़की की डायरी'** की कविता **'परिवर्तन'** में प्रकृति के सामान्य प्रतीकों के माध्यम से बदलते परिवेश और जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों को अत्यंत सहज ढंग से अभिव्यक्त किया गया है; जहाँ धूप, सूरज, दोपहर और कौवे जैसे प्राकृतिक उपादान केवल दृश्य का निर्माण नहीं करते दिखते; वरन् समय के परिवर्तन और मनुष्य के अनुभवों के साथ गहरा संबंध स्थापित करते दिखाई देते हैं –

"धूप ने गिरवी रख चाँदी
गिल्लत है पहनी जबसे,
सूरज मेरे कन्धों की ओट ले ढलता है
अलगनी से दोपहर उतरती है
धुली-धुली, पर तुड़ी-मुड़ी-सी
मेरे घर के आस-पास बस कौवे उड़ते हैं" [3]

सामान्यतः स्त्री और प्रकृति के बीच गहरा संबंध इसलिए अनुभव किया जाता है क्योंकि दोनों ही जीवनदायिनी, पोषणकारी, सृजनशील और धैर्यशील शक्तियाँ हैं । एक स्त्री जिस प्रकार परिवार, समाज और जीवन को अपनी संवेदना, वात्सल्य एवं सृजन से समृद्ध करती है; उसी प्रकार प्रकृति भी समस्त जीव-जगत का पालन-पोषण करती है तथा दोनों ही निरंतर एक 'प्रोवाइडर' का कार्य करती हैं; किंतु विडंबना यह है कि दोनों का ही सबसे अधिक दोहन और नियंत्रण किया गया है । यही कारण है कि समकालीन स्त्री-कविता में प्रकृति स्त्री की अस्मिता, स्वतंत्रता और पहचान का प्रतीक बनकर उभरती है । प्रख्यात आदिवासी कवयित्री **निर्मला पुतुल** की कविता **'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा'** केवल एक बेटी की विवाह-संबंधी इच्छा नहीं हैं; बल्कि प्रकृति से उसके गहरे आत्मीय संबंध की अभिव्यक्ति हैं । यहाँ जंगल, नदी, पहाड़, खुला आँगन, मुर्गे की बाँग और पहाड़ी पर डूबता सूरज स्त्री के जीवन, स्मृतियों, सांस्कृतिक पहचान और भावनात्मक अस्तित्व के अभिन्न अंग हैं । इसलिए वह ऐसे स्थान पर विवाह नहीं चाहती जहाँ प्रकृति से उसका यह जीवंत रिश्ता टूट जाए –

"बाबा!
मुझे उतनी दूर मत ब्याहना
x x x x x
जंगल नदी पहाड़ नहीं हों जहाँ
x x x x x
उस घर से मत जोड़ना मेरा रिश्ता
जिस घर में बड़ा-सा खुला आँगन न हो
मुर्गे की बाँग पर जहाँ होती ना हो सुबह
और शाम पिछवाड़े से जहाँ
पहाड़ी पर डूबता सूरज ना दिखे" [4]

निर्मला पुतुल की उपर्युक्त कविता में स्त्री-प्रकृति का संबंध विशेष रूप से आदिवासी जीवन-दृष्टि से जुड़ता है । आदिवासी समाज में जंगल, नदी और पहाड़ केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं; अपितु जीवन, संस्कृति और सामुदायिक अस्तित्व के आधार होते हैं; इसलिए विवाह के बाद इनसे दूर हो जाना केवल भौगोलिक दूरी नहीं; बल्कि अपनी जड़ों, संस्कृति और आत्म-पहचान से दूर हो जाने की पीड़ा भी है । इस प्रकार निर्मला पुतुल की यह कविता स्त्री और प्रकृति के अंतर्संबंध को अत्यंत मार्मिक और स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करती है ।

उपर्युक्त कविताओं का अध्ययन-विश्लेषण करते हुए यह अनुभव होता है कि इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कवयित्रियों के लिए प्रकृति बाहर की कोई दुनिया नहीं; वरन् जीवन का अपना विस्तार है । इसलिए उनकी कविता में प्रकृति के प्रति अपनापन सहज रूप से दिखाई देता है । यही अपनापन तब चिंता में बदल जाता है; जब वे नदियों को प्रदूषित होते, जंगलों को उजड़ता देखते, पहाड़ों को टूटते और मिट्टी को अपनी पहचान खोते हुए देखती हैं । इस बिंदु पर उनकी कविता केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं रह जाती; अपितु पर्यावरण के प्रति सजग और संवेदनशील दृष्टि का निर्माण भी करती है । प्रकृति के प्रति संवेदनशील होना केवल उसके सौंदर्य का अनुभव करना नहीं है; उसकी बदलती स्थिति को समझना, उसके क्षरण पर चिंता व्यक्त करना और उसके संरक्षण की आवश्यकता को महसूस करना भी उसी संवेदना का हिस्सा है । इसलिए समकालीन हिन्दी कवयित्रियों की कविता में प्रकृति-संवेदना अपने व्यापक अर्थ में सामने आती है; जहाँ आत्मीयता, चिंता और संरक्षण – तीनों एक-दूसरे से जुड़े हुए दिखाई देते हैं ।

जब मनुष्य प्रकृति को अपने जीवन का हिस्सा मानता है; तभी उसके संरक्षण की चिंता भी उसके भीतर विकसित होती है । आज के समय में बढ़ते प्रदूषण, जंगलों की कटाई, नदियों के प्रदूषित होने, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने पर्यावरण के प्रश्न को पहले से कहीं अधिक गंभीर बना दिया है । इस दृष्टि से कवयित्रियों की कविताएँ प्रकृति के सौंदर्यबोध के साथ-साथ पर्यावरणीय-संकट की पहचान और उसके संरक्षण की आवश्यकता – दोनों को समान महत्त्व देती हैं । समकालीन हिन्दी कवयित्रियों की 'प्रकृति-संवेदना' उनके अपने निजी जीवन के अनुभवों से उपजती है । उनकी कविताओं में सूखती नदियाँ, कटते जंगल, बदलती ऋतुएँ, श्रुतिग्रस्त हरियाली और संकटग्रस्त जीव-जगत बार-बार सामने आते हैं । ये दृश्य केवल प्रकृति के बदलते रूप का चित्रण नहीं करते; बल्कि मनुष्य द्वारा निर्मित पर्यावरणीय-संकट की ओर भी संकेत करते हैं । कवयित्रियाँ स्पष्ट

[2] वही, पृ-61
[3] संदर्भ - एक कसबाई लड़की की डायरी, अनामिका, वाणी प्रकशन, प्रथम संस्करण, 2019, नई दिल्ली, पृ. 43
[4] हरित कविता, संपादक- प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2022, पृ- 71

करती हैं कि प्रकृति और मनुष्य का अस्तित्व एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है; इसलिए प्रकृति को पहुँचने वाली हर क्षति अंततः मानव जीवन को भी प्रभावित करती है । इस प्रकार उनकी कविता पर्यावरण-संरक्षण को एक सामाजिक और मानवीय उत्तरदायित्व के रूप में स्थापित करती है ।

आज पर्यावरण का प्रश्न हमारे समय की सबसे बड़ी चुनौतियों में शामिल है । विकास की तेज़ रफ़्तार ने जीवन को सुविधाजनक तो बनाया है; लेकिन इसकी सबसे बड़ी कीमत प्रकृति ने चुकाई है । जंगल लगातार कम हो रहे हैं, नदियाँ अपना स्वाभाविक रूप खो रही हैं, हवा और मिट्टी प्रदूषित हो रही हैं तथा अनेक जीव-प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर हैं । ऐसे बदलते परिवेश ने समकालीन हिन्दी कवयित्रियों को भी गहराई से प्रभावित किया है । उनकी कविताओं में यह चिंता सीधे दिखाई देती है; वे अपने आसपास घट रही इन घटनाओं को दर्ज करती हैं और पाठक को यह सोचने के लिए विवश करती हैं कि प्रकृति के बिना मनुष्य का भविष्य सुरक्षित नहीं रह सकता।

इसी सोच के अधीन समकालीन हिन्दी कवयित्रियों ने पर्यावरण के प्रश्न को अलग-अलग अनुभवों और संदर्भों के साथ अपनी कविता में स्थान दिया है । **सविता सिंह** ने अपने काव्य-संकलन 'स्वप्न समय' की कविता **'उस बूढ़े कवि की तरह'** में मनुष्य और प्रकृति के टूटते संबंधों पर चिंता व्यक्त की है; **नीलेश रघुवंशी** के काव्य-संकलन 'घर-निकासी' की कविताओं- **'जैसे आग'**, **'फूल'** और **'जंगल और जड़'** में बदलते पर्यावरण, सिकुड़ती हरियाली और विकास के दुष्प्रभावों को रेखांकित किया गया है । **रंजना जायसवाल** ने (संग्रह- सिर्फ कागज़ पर नहीं) **'पहाड़'** और **'बाढ़ के बाद'** कविता के माध्यम से प्रकृति के असंतुलन और उसके मानवीय जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को अभिव्यक्ति दी है । **इन्दु सिंह** ने 'तुम्हारे जाने के बाद' संकलन में संकलित कविता **'पर्यावरण रक्षा'** तथा **'कहाँ है मेरा गाँव'** में पर्यावरण संरक्षण और गाँव के बदलते प्राकृतिक परिवेश को संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । **श्यामा सिंह** की **'वन का कानून'** (संग्रह- नई राहों पर) जंगलों की अपनी व्यवस्था और मानव हस्तक्षेप के दुष्परिणामों की ओर ध्यान आकर्षित करती है । **सुधा सिन्हा** की कविता **'नारी'** (संग्रह- क्या हूँ मैं, कौन हूँ) स्त्री और प्रकृति के सहज सामंजस्य को सामने लाती है । **अंजू रंजन** ने अपने काव्य-संग्रह 'विस्थापन और यादें' में संकलित **'झारखंड के जंगल'** तथा **'देश को ढूँढ़ती हूँ'** कविता में जंगल, आदिवासी जीवन और विस्थापन के बीच गहरे संबंध को उभारा है। **मनोरमाबिस्वाल महापात्र** की **'अकेला पहाड़'**, **'अतीत आज स्थापत्य बन गया'**, **'तुझे पहचानती हूँ उड़ीसा'** और **'फिर जन्म लूँगी उड़ीसा में'** जैसी कविताएँ प्रकृति, स्मृति और क्षेत्रीय पहचान को पर्यावरणीय दृष्टि से देखती हैं । **रश्मि अग्रवाल** ने 'परवाज' की **'विकास या विनाश'** में विकास की अंधी दौड़ से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट पर प्रश्न उठाया है । **प्रीति दुबे** (संग्रह-प्रीति के नव रंग) की कविता **'तरु को बचाएँ'**, **'वृक्ष बिना मानव निर्मूल'** और **'भू-प्रदूषण'** में वृक्षों और स्वच्छ पर्यावरण की अनिवार्यता को रेखांकित किया है । आदिवासी कवयित्री **जसिंता केरकेट्टा** (काव्यसंग्रह- ईश्वर और बाज़ार) की कविता **'बाज़ार, अनाज और आदमी'**, **'पेड़ों ने तुमसे क्या कहा'**, **'क्यों गंदी हो जाती है गंगा'** तथा अन्य कविताओं में विकास, बाज़ार और आदिवासी जीवन पर पर्यावरणीय संकट के प्रभाव को तीखे ढंग से व्यक्त किया है; जबकि **पल्लवी शर्मा** के काव्य-संकलन **'कोतलार के पैर'** में संकलित कविता **'जंगलों से आती आवाज़ें'** जंगलों के बदलते स्वरूप को दर्ज करती हैं । **अजंता देव** की **कविता 'भूकम्प'** (काव्यसंग्रह- घोड़े की आँखों में आँसू) प्राकृतिक आपदाओं के माध्यम से पर्यावरणीय असंतुलन की भयावहता का एहसास कराती है ।

पहाड़ सदियों से प्रकृति की स्थिरता, धैर्य और जीवन के प्रतीक रहे हैं; लेकिन आज वही पहाड़ मानवीय हस्तक्षेप से सबसे अधिक आहत दिखाई देते हैं । रंजना जायसवाल ने अपने काव्य-संग्रह **'सिर्फ कागज़ पर नहीं'** में संकलित कविता **'पहाड़'** में इस बदलती स्थिति को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है । यहाँ पहाड़ अपनी पीड़ा स्वयं व्यक्त करता है और विकास के नाम पर किए जा रहे प्रकृति-विनाश का साक्षी बनकर सामने आता है –

"पहाड़ मुझे देखते ही चिल्लाया—पहचाना!
पहचाना मुझे!!
x x x x x x x
देखो, इंसानों ने कैसी कर दी है मेरी दुर्गति!
काँट-छाँटकर कम कर दी मेरी ऊँचाई
मुँड़ दिए केश-वृक्ष
देह में बना लीं सड़कें, घर, होटल, बाज़ार" [5]

रंजना जायसवाल की कविता जहाँ पहाड़ों पर बढ़ते मानवीय हस्तक्षेप की ओर ध्यान आकृष्ट करती है; वहीं कवयित्री सविता सिंह की कविताएँ इस चिंता को और व्यापक रूप देती हैं । उनके लिए पर्यावरण का संकट केवल पहाड़ों या नदियों तक सीमित नहीं है; परंतु पूरे प्राकृतिक संसार से जुड़ा हुआ है । काव्य-संकलन **'स्वप्न समय'** की कविता **'उस बूढ़े कवि की तरह'** में वे वृक्षों के अस्तित्व और उनके निरंतर घटते संसार को एक गहरे मानवीय प्रश्न की तरह सामने रखती हैं । कवयित्री वृक्षों को केवल लकड़ी या उपयोग की वस्तु नहीं मानती; परंतु उन्हें एक जीवित सत्ता के रूप में देखती हैं; जिनकी अपनी स्मृतियाँ, पहचान और अस्तित्व है । इसी संवेदना को वे इन पंक्तियों में व्यक्त करती हैं –

"मैं जरूर जानना चाहूँगी
तारे कैसे मरते हैं और क्यों
वृक्ष कैसे खोते हैं अपने वन
बचे रह जाते हैं क्यों काटने और दरवाज़ा बनने के बाद भी
अस्तित्व के दाग उनके सुंदर रेशे
चमकाया जाता है जिन्हें कुछ लोगों के सौंदर्य बोध के लिए" [6]

आज विकास की दौड़ ने मानव जीवन को अनेक सुविधाएँ दी हैं; लेकिन इसके साथ प्रकृति को भी भारी नुकसान पहुँचा है; बड़े-बड़े उद्योग, खनन, बाँध, चौड़ी सड़कें, ऊँची इमारतें और आधुनिक तकनीक विकास के प्रतीक माने जाते हैं; पर इनकी कीमत जंगलों, नदियों, पहाड़ों और हमारी

[5] सिर्फ कागज़ पर नहीं, रंजना जायसवाल, वाणी प्रकशन, प्रथम संस्करण, 2012, नई दिल्ली, पृ-101
[6] स्वप्न समय, सविता सिंह, राधाकृष्ण पेपरबैक, नई दिल्ली, संकरण-201 3, पृ-37

जैव-विविधता को चुकानी पड़ रही है । विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन का प्रश्न आज पहले से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है । समकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ इसी चिंता को अपनी कविताओं में गंभीरता से उठाती हैं । कवयित्री रश्मि अग्रवाल ने अपने काव्य-संग्रह **'परवाज़'** की कविता **'विकास या विनाश'** में इसी प्रश्न को केंद्र में रखकर मनुष्य की अंधी विकास-लालसा पर तीखा प्रश्न खड़ा किया है –

"जब जब मानव विकास की चोटी छू जाता है
तब उसका मन विनाश को ललचाता है
इतिहास साक्षी है यही बात हर बार हुई है
प्रकृति के आगे सदा मनुज की हार हुई है" [7]

आज जंगल केवल पेड़ों का समूह नहीं हैं; परंतु पूरी जैव-विविधता और मानव जीवन का आधार हैं । फिर भी विकास की अंधी दौड़ में सबसे पहले इन्हीं जंगलों पर आघात किया जाता है । सड़कें, बिजली परियोजनाएँ, खनन और बड़े निर्माण कार्यों के लिए लगातार जंगलों को काटा जा रहा है । इसका असर केवल पेड़ों तक सीमित नहीं रहता; बल्कि पक्षियों, जानवरों, नदियों और वहाँ रहने वाले लोगों के जीवन पर भी पड़ता है । पल्लवी शर्मा ने अपने काव्य-संग्रह **'कोलतार के पैर'** की एक कविता **'जंगलों से आतीं आवाज़ें'** में इसी बदलते यथार्थ को बेहद मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है । कवयित्री जंगलों को एक जीवित संसार की तरह देखती हैं और उनके विनाश को पूरे पर्यावरण के संकट के रूप में प्रस्तुत करती हैं –

"पसार कर अपना पैर
कलम कर रहे हैं उन्हें
जिसकी छाया में
गौरैया-गिलहरी और हम सब का
एक साथ उठना बैठना है" [8]

समकालीन हिन्दी कवयित्रियों की 'प्रकृति-संवेदना' केवल पर्यावरण के विनाश का चित्रण करके नहीं थमती; परंतु उसके संरक्षण की आवश्यकता पर भी बराबर ज़ोर देती है । उनकी कविताओं में प्रकृति के प्रति चिंता के साथ-साथ उसे बचाने का आग्रह भी दिखाई देता है । विशेष रूप से वृक्षों को जीवन के आधार के रूप में स्वीकार करते हुए वे वृक्षारोपण और हरियाली के विस्तार का संदेश देती हैं । कवयित्री प्रीति दुबे ने अपने काव्य-संग्रह **'प्रीत के नव रंग'** की कविता **'वृक्ष बिना मानव निर्मूल'** में इसी विचार को सरल और प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है । कवयित्री का मानना है कि वृक्ष केवल प्रकृति की शोभा नहीं बढ़ाते; वरन् मानव जीवन के अस्तित्व और संतुलन के लिए भी अनिवार्य हैं –***"आओ मिलकर वृक्ष लगाएँ/ x x x x /वृक्ष ही हैं जीवन का सार / इन बिन मानव है निर्मूल"*** [9] इन पंक्तियों में कवयित्री पर्यावरण-संरक्षण को मानव-समाज की एक सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में प्रस्तुत करती हैं । इस प्रकार यह कविता पर्यावरणीय चेतना को व्यवहारिक रूप देती है और पाठक के भीतर प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व का भाव जगाती है ।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कवयित्रियों ने प्रकृति और पर्यावरण के प्रश्न को अपने समय के महत्त्वपूर्ण सरोकार के रूप में देखा है । उनकी कविता में अभिव्यक्त प्रकृति के प्रति आत्मीय लगाव, जीवन के साथ उसका गहरा संबंध और उसके लगातार बदलते स्वरूप की चिंता समान रूप से दिखाई देती है । वे इस बात को रेखांकित करती हैं कि प्रकृति और मनुष्य का अस्तित्व एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है; इसलिए पर्यावरण का संकट केवल प्राकृतिक संसाधनों का संकट नहीं; अपितु मानव के जीवन, संस्कृति और भविष्य का भी संकट है; यही कारण है कि उनकी रचनाओं में प्रकृति के प्रति संवेदनशील-दृष्टि के साथ पर्यावरण-संरक्षण का स्पष्ट आग्रह भी मिलता है । इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समकालीन हिन्दी कवयित्रियों की कविता प्रकृति के सौंदर्य, उसके बदलते स्वरूप और उससे जुड़े पर्यावरणीय-संकटों को समान संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त करती हैं । उनकी रचनाओं में अंधाधुंध विकास, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और पारिस्थितिक असंतुलन जैसे प्रश्न गंभीर चिंता के रूप में उभरते हैं । इस प्रकार उनकी कविता वर्तमान समय में पर्यावरण के प्रति जागरूकता विकसित करने के साथ-साथ मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्यपूर्ण और संवेदनशील संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देती हैं ।

संदर्भ

6. कुमार जैनेंद्र, सुखदा, पूर्वोदय प्रकाशन, पृ.62

7. यशपाल, झूठासच, लोकभारती प्रकाशन,पृ.38

8. कुमारी सरोज {सं}, कामकाजी महिला, अनन्य प्रकाशन, 2021, पृ.57

9. सौरभ प्रदीप, और सिर्फ तितली, 2015, वाणी प्रकाशन, पृ.27

10. वही, पृ.34

11. अनामिका, आईनासाज़, राजकमल प्रकाशन, 2020, पृ.10

12. शर्मा ब्रह्मदत्त, आधी दुनिया पूरा आसमान, शिवना प्रकाशन, 2024, पृ.151

13. पुष्पा मैत्रयी, विज़न, वाणी प्रकाशन, 2002, पृ.11

14. वही, पृ.53

15. वही, पृ.86

---

[7] रश्मि अग्रवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2023, पृ- 18-19
[8] कोलतार के पैर, पल्लवी शर्मा, अंतिका प्रकाशन, गाज़ियाबाद यूपी, प्रथम संस्करण-2022, पृ- 107
[9] प्रीत के नव रंग, प्रीति दुबे, बोधि प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2025, पृ-134

16. कटारे महेश, कालीधार, शिवना प्रकाशन, 2019, पृ.192

17. मुद्गल चित्रा, नकटौरा, सामयिक प्रकाशन, 2022, पृ.

18. शर्मा ब्रहमदत्त, आधी दुनिया पूरा असमान, शिवना प्रकाशन, 2024, पृ. 256

19. पुष्पा मैत्रयी, गुनाह बेगुनाह, राजकमल प्रकाशन, 2011, पृ.66

20. अग्निहोत्री कृष्णा, बित्ता भर की छोकरी, अमन प्रकाशन, 2014, पृ.281

21. मुद्गल चित्रा, नकटौरा, सामयिक प्रकाशन, 2022, पृ.281

22. अग्निहोत्री कृष्णा, बित्ता भर की छोकरी, अमन प्रकाशन, 2014, पृ.187

23. गुप्त रजनी, ये आम रास्ता नहीं, वाणी प्रकाशन, 2013, पृ.25

24. मुद्गल चित्रा, नकटौरा, सामयिक प्रकाशन, 2022, पृ.35

25. वही, पृ.52

26. अनामिका, आईनासाज़, राजकमल प्रकाशन, 2020, पृ.127

27. वही, पृ.211

28. सौरभ प्रदीप, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, 2009, पृ.107

29. गुप्त रजनी, तिराहे पर तीन, राजपाल एण्ड सन्ज प्रकाशन, 2021, पृ. 135

30. पुष्पा मैत्रयी, गुनाह बेगुनाह, राजकमल प्रकाशन, 2011, पृ.126

31. वही, पृ.233

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED MULTIDISCIPLINARY RESEARCH IN SOCIAL SCIENCES AND HUMANITIES
IJAMRSSH